International Journal of Leading Research Publication (IJLRP)

E-ISSN: 2582-8010 ● Website: www.ijlrp.com ● Email: editor@ijlrp.com

प्रेमचन्द के साहित्य में लिंग राजनीति और आधुनिक नारीवादी पाठ

सोनम सिंह[1], डॉ. जयसिंह यादव[2]

[1]पी-एच.डी. शोध छात्रा, [2]शोध निर्देशक

हिंदी विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

सारांश

प्रेमचन्द का साहित्य भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति, उनकी पीड़ा और उनके संघर्ष का एक जीवंत दस्तावेज़ है, जो आज भी आधुनिक नारीवादी विमर्श में प्रासंगिक है। उनकी कहानियाँ और उपन्यास यह दिखाते हैं कि स्त्रियाँ केवल घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे समाज और राजनीति की सक्रिय भागीदार भी हो सकती थीं। निर्मला, सेवासदन, गबन और गोदान जैसे उपन्यास स्त्री-अस्तित्व की बहुआयामी जटिलताओं को सामने लाते हैं, जहाँ वे एक ओर त्याग और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति दिखाई देती हैं और दूसरी ओर प्रतिरोध और परिवर्तन की वाहक भी। प्रेमचन्द की स्त्रियाँ असमानताओं से जूझते हुए भी बराबरी और न्याय की तलाश करती हैं, जो उन्हें नारीवादी दृष्टिकोण से विशेष महत्व प्रदान करती है। उनका साहित्य घरेलू स्थान, लैंगिक भूमिकाओं और रोज़मर्रा की प्रथाओं में छिपी असमानताओं को भी उजागर करता है, जो स्त्रीवादी समाजशास्त्र के लिए महत्त्वपूर्ण आधार बनता है। औपनिवेशिक आधुनिकता और राष्ट्रवाद के संदर्भ में प्रेमचन्द ने "नई भारतीय नारी" की छवि गढ़ने का प्रयास किया, जो परम्परा और आधुनिकता के बीच संतुलन साधते हुए आत्मसम्मान और समानता की दिशा में अग्रसर होती है। उनकी रचनाएँ न केवल स्त्रियों की अधीनता और हाशियाकरण को रेखांकित करती हैं, बल्कि उनके प्रतिरोध और अधिकारों की सम्भावनाओं को भी सामने लाती हैं। इस प्रकार, प्रेमचन्द का साहित्य स्त्रियों के संघर्ष, स्वायत्तता और सामाजिक परिवर्तन की राजनीति को समझने के लिए आधुनिक नारीवादी आलोचना में एक अनिवार्य संदर्भ है।

मुख्य शब्द: प्रेमचन्द, स्त्री-अस्तित्व, नारीवादी विमर्श, औपनिवेशिक आधुनिकता और राष्ट्रवाद, प्रतिरोध और स्वायत्तता

1. परिचय

हिन्दी और उर्दू साहित्य में प्रेमचन्द का नाम सामाजिक यथार्थ और मानव जीवन की गहन पड़ताल के लिए जाना जाता है। उनके कथा-संसार में स्त्रियों का जीवन, उनकी पीड़ा और उनके संघर्ष विशेष महत्व रखते हैं। प्रेमचन्द ने स्त्रियों को केवल घर की चारदीवारी में सीमित न दिखाकर, समाज और राजनीति के सक्रिय हिस्से के रूप में चित्रित किया। उनका साहित्य स्त्रियों की दोहरी दासता–एक ओर पितृसत्तात्मक परिवार और दूसरी ओर सामंती-सामाजिक ढाँचे–को उद्घाटित करता है। इस प्रकार वे स्त्री-जीवन के यथार्थ को सामने लाकर उसे भारतीय सामाजिक सुधारवादी विमर्श से जोड़ते हैं। गीता पाण्डेय ने प्रेमचन्द के साहित्य में स्त्री की समानता और असमानता पर विचार करते हुए लिखा है कि प्रेमचन्द की स्त्रियाँ यथार्थ में बंधी हुई हैं, परन्तु उनमें प्रश्न करने और प्रतिरोध की चेतना भी दिखाई देती है (पाण्डेय, 1986)।

प्रेमचन्द के उपन्यास और कहानियाँ, विशेष रूप से गोदान, निर्मला, सेवासदन और गबन, स्त्री-अस्तित्व की जटिलताओं को अनेक स्तरों पर उद्घाटित करते हैं। वे न केवल स्त्रियों की करुणा और संवेदना को सामने लाते हैं, बल्कि उनके भीतर छिपी हुई स्वायत्तता को भी रेखांकित करते हैं। उनके पात्र–चाहे वह निर्मला जैसी उपेक्षित पत्नी हो या झुनिया जैसी वंचित स्त्री–समाज में व्याप्त अन्याय और असमानता को उजागर करते हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द स्त्रियों को केवल दया की पात्र न बनाकर सामाजिक परिवर्तन की वाहक के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जैसा कि जे. लाल दावर ने कहा है, प्रेमचन्द

के स्त्री-पात्र पारंपरिक स्त्रीत्व और उदित होते नारीवाद के बीच झूलते दिखाई देते हैं, जो उनके साहित्य की जटिलता और बहुआयामिता को दर्शाता है (लाल दावर, 1987)।

आधुनिक नारीवादी पाठ के दृष्टिकोण से देखें तो प्रेमचन्द की रचनाएँ केवल सामाजिक यथार्थ का चित्रण ही नहीं करतीं, बल्कि स्त्री-अधिकारों और समानता के प्रश्नों को भी उठाती हैं। स्त्रियों के जीवन में प्रेमचन्द ने जिस असमानता और संघर्ष को चित्रित किया, वह आज भी भारतीय समाज की कई परतों में दिखाई देता है। आधुनिक नारीवादी आलोचना प्रेमचन्द के साहित्य को केवल एक ऐतिहासिक युग की झलक नहीं मानती, बल्कि उसे ऐसे ग्रंथ के रूप में देखती है जो स्त्री के अस्तित्व, संघर्ष और प्रतिरोध के प्रश्नों को गहराई से समझने का अवसर देता है। इस प्रकार, प्रेमचन्द के साहित्य में लिंग-राजनीति का अध्ययन आधुनिक नारीवादी विमर्श को भारतीय परिप्रेक्ष्य में समझने के लिए एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

2. प्रेमचन्द के साहित्य में स्त्रियाँ: परम्परा और सुधारवादी दृष्टि के बीच

प्रेमचन्द का साहित्य स्त्री-अस्तित्व के द्वंद्व और संघर्ष को अत्यंत यथार्थवादी रूप में प्रस्तुत करता है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भारत में स्त्रियाँ एक ओर सामाजिक परम्पराओं और पितृसत्तात्मक मूल्यों से जकड़ी हुई थीं, वहीं दूसरी ओर सुधारवादी आंदोलनों की आहट उन्हें नए अवसर भी प्रदान कर रही थी। प्रेमचन्द के कथा-संसार में स्त्रियाँ अक्सर पारंपरिक भूमिकाओं–पत्नी, माँ, बहू–में कैद दिखाई देती हैं, परंतु लेखक उन्हें केवल निष्क्रिय पात्र नहीं बनाते। वे स्त्री के भीतर मौजूद प्रतिरोध, आत्मसम्मान और स्वायत्तता को पहचानते हैं और उनके माध्यम से समाज के यथार्थ को उद्घाटित करते हैं। गीता पाण्डेय का कहना है कि प्रेमचन्द की स्त्रियाँ असमानता की शिकार होते हुए भी बराबरी के लिए संघर्ष करती हुई दिखाई देती हैं (पाण्डेय, 1986)। इस दृष्टि से प्रेमचन्द परम्परा और सुधार के बीच एक सशक्त संवाद रचते हैं।

उनके उपन्यास निर्मला, सेवासदन, गबन और गोदान में स्त्रियों की पीड़ा, संघर्ष और आत्मत्याग के विविध रूप सामने आते हैं। निर्मला की नायिका एक ओर पारिवारिक परम्पराओं की शिकार है, तो दूसरी ओर वह यह प्रश्न भी उठाती है कि स्त्रियों को सदैव त्याग और सहनशीलता का प्रतीक क्यों माना जाए। इसी प्रकार गोदान में झुनिया का चरित्र समाज की कठोरता और स्त्री-विरोधी दृष्टि को खुलकर चुनौती देता है। जे. लाल दावर ने प्रेमचन्द की स्त्रियों के बारे में लिखा है कि वे नारीत्व की पारंपरिक परिभाषा और उभरते हुए नारीवादी दृष्टिकोण के बीच झूलती प्रतीत होती हैं (लाल दावर, 1987)। वहीं आर. ओबेसेकेरे ने विशेष रूप से गोदान का विश्लेषण करते हुए बताया है कि इसमें स्त्रियों के अधिकारों और भूमिकाओं को लेकर गहरी सामाजिक आलोचना की गई है (ओबेसेकेरे, 1986)।

प्रेमचन्द की स्त्रियाँ केवल पारिवारिक संदर्भों तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि वे व्यापक सामाजिक और राजनीतिक प्रश्नों को भी छूती हैं। शशांक के. सिंह ने स्पष्ट किया है कि प्रेमचन्द का साहित्य औपनिवेशिक भारत में स्त्रियों की स्थिति को "प्रतिरोध और अनुकूलन" दोनों के बीच रखता है, जहाँ स्त्रियाँ कभी सामाजिक व्यवस्था को चुनौती देती हैं तो कभी उसमें समाहित हो जाती हैं (सिंह, 2024)। इसी तरह चारु गुप्ता भी मानती हैं कि प्रेमचन्द की कहानियों में स्त्रियों का चित्रण समाज की संरचनात्मक असमानताओं पर प्रश्नचिह्न लगाता है, विशेषकर तब जब उनके पात्र जाति और लिंग दोनों के आधार पर हाशिये पर धकेल दिए जाते हैं (गुप्ता, 1991)। इस प्रकार उनका लेखन स्त्रियों के बहुआयामी जीवन और संघर्ष को उद्घाटित करता है।

आधुनिक नारीवादी आलोचना प्रेमचन्द को इस दृष्टि से पढ़ती है कि वे स्त्रियों की 'नई छवि' गढ़ने का प्रयास कर रहे थे। सुरभि रॉय का कहना है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ एक 'नई भारतीय नारी' को गढ़ने की राजनीति में शामिल थीं,

जो उपनिवेशवादी सत्ता और पितृसत्ता दोनों के प्रतिमानों से अलग खड़ी होती है (रॉय, 2016)। इसी कड़ी में के. जेयालक्ष्मी प्रेमचन्द को एक सामाजिक सुधारक मानती हैं, जिनकी दृष्टि स्त्री की मुक्ति को भारतीय समाज के विकास से जोड़ती है (जेयालक्ष्मी, 2016)। इस प्रकार, प्रेमचन्द के साहित्य में स्त्रियों की छवियाँ परम्परा और सुधार के बीच निरंतर संघर्षरत रहती हैं–जहाँ वे कभी त्याग और सहनशीलता की मूर्ति बनती हैं तो कभी प्रतिरोध और परिवर्तन की आवाज़।

3. "लैंगिक स्थान और रोज़मर्रा की प्रथाएँ: स्त्रीवादी समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द का पाठ"

3.1. प्रेमचन्द और स्त्रीवादी समाजशास्त्रीय दृष्टि

प्रेमचन्द के साहित्य में स्त्रियों का स्थान केवल घरेलू जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि यह पूरे सामाजिक ढाँचे और रोज़मर्रा की प्रथाओं से जुड़ा हुआ है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भारत में स्त्रियाँ घर और समाज दोनों जगह एक अनुशासित और नियंत्रित जीवन जीने को विवश थीं। स्त्रियों का "स्थान" (space) पितृसत्ता द्वारा निर्धारित था, जहाँ उन्हें गृहस्थ जीवन, त्याग और सेवा तक सीमित कर दिया गया था। प्रेमचन्द इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था को चुनौती देते हुए स्त्री को एक सक्रिय सामाजिक इकाई के रूप में चित्रित करते हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों में स्त्रियों के अनुभव यह दर्शाते हैं कि कैसे रोज़मर्रा की प्रथाएँ (जैसे खाना पकाना, देखभाल, श्रम और निर्णयों से बहिष्करण) स्त्रियों की स्थिति को तय करती हैं। गीता पाण्डेय का मानना है कि प्रेमचन्द की रचनाएँ यह दिखाती हैं कि स्त्रियाँ असमानता के ढाँचे के भीतर रहते हुए भी बराबरी और न्याय के लिए संघर्षरत हैं (पाण्डेय, 1986)। इस प्रकार, प्रेमचन्द स्त्रियों की सामाजिक वास्तविकताओं को उजागर करते हुए उन्हें नए विमर्श का हिस्सा बनाते हैं।

3.2. घरेलू स्थान, लैंगिक भूमिकाएँ और प्रेमचन्द की रचनाएँ

प्रेमचन्द का दृष्टिकोण स्त्रियों को केवल घरेलू भूमिका तक सीमित नहीं करता। उनके उपन्यास सेवासदन, निर्मला और गोदान यह दिखाते हैं कि घर और बाहर का स्थान (domestic and public space) कैसे स्त्रियों के जीवन को आकार देता है। निर्मला में विवाह संस्था और दहेज-प्रथा स्त्री की स्वायत्तता को नष्ट करती हैं, वहीं गोदान में झुनिया जैसे पात्र यह दिखाते हैं कि घरेलू और सामाजिक स्थान किस तरह एक-दूसरे से टकराते हैं। जे. लाल दावर का कहना है कि प्रेमचन्द की स्त्रियाँ परम्परागत नारीत्व और उभरते हुए नारीवादी दृष्टिकोण के बीच झूलती रहती हैं (लाल दावर, 1987)। यही द्वंद्व उनके साहित्य का मूल है–जहाँ स्त्रियाँ त्याग और सहनशीलता की प्रतीक भी हैं और सामाजिक परिवर्तन की वाहक भी। स्त्रियों का श्रम, चाहे वह घर में हो या खेत में, समाज और अर्थव्यवस्था को टिकाए रखता है, लेकिन उसे मान्यता नहीं मिलती। प्रेमचन्द का साहित्य इस विसंगति को यथार्थवादी रूप में उजागर करता है।

3.3. रोज़मर्रा की प्रथाएँ और स्त्री-मुक्ति का प्रश्न

स्त्रीवादी समाजशास्त्र के परिप्रेक्ष्य से देखें तो प्रेमचन्द के साहित्य में स्त्रियों का संघर्ष केवल बड़े सामाजिक आंदोलनों तक सीमित नहीं है, बल्कि वह उनके दैनिक जीवन की छोटी-छोटी प्रथाओं से भी जुड़ा है। खाना बनाना, बच्चों की देखभाल, पति और परिवार की सेवा करना–ये सब कार्य स्त्रियों को "प्राकृतिक" भूमिकाओं के रूप में सौंप दिए गए थे। प्रेमचन्द इन कार्यों के भीतर छिपे शोषण और असमानता को पहचानते हैं। वे यह दिखाते हैं कि स्त्रियों का श्रम अदृश्य रहते हुए भी समाज की नींव है। के. जेयालक्ष्मी का कहना है कि प्रेमचन्द का साहित्य केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि एक सामाजिक सुधारवादी दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह स्त्रियों की मुक्ति को राष्ट्र और समाज के विकास से जोड़ता है (जेयालक्ष्मी, 2016)। इस प्रकार, स्त्रीवादी समाजशास्त्र के माध्यम से प्रेमचन्द को पढ़ना हमें यह समझने में मदद करता है कि उनका साहित्य स्त्री-अनुभवों, लैंगिक भूमिकाओं और रोज़मर्रा की प्रथाओं की गहरी आलोचना करता है।

4. नई भारतीय नारी की पुनर्रचना: राष्ट्रवाद, औपनिवेशिक आधुनिकता और प्रेमचन्द की कथाएँ

औपनिवेशिक भारत में राष्ट्रवाद और आधुनिकता की बहस ने स्त्री की भूमिका और पहचान को गहराई से प्रभावित किया। इस कालखंड में "नई भारतीय नारी" की छवि एक सांस्कृतिक परियोजना के रूप में उभरी, जहाँ स्त्रियों को राष्ट्र की गरिमा और नैतिकता का प्रतीक माना गया। प्रेमचन्द का साहित्य इस विमर्श को सामाजिक यथार्थ से जोड़ता है। उनकी रचनाओं में स्त्री न तो केवल गृहस्थ जीवन तक सीमित है और न ही पश्चिमी आधुनिकता की नकल भर करती है, बल्कि वह भारतीय समाज की असमानताओं और संघर्षों से टकराती हुई एक नए प्रकार की चेतना को जन्म देती है। सेवासदन और निर्मला जैसी रचनाएँ यह दिखाती हैं कि स्त्रियों का जीवन किस प्रकार औपनिवेशिक सामाजिक सुधार की जटिलताओं में फँसा हुआ था। गीता पाण्डेय का मत है कि प्रेमचन्द की स्त्रियाँ असमान परिस्थितियों में रहते हुए भी समानता की खोज करती हैं और इस तरह वे राष्ट्रवादी विमर्श में एक सक्रिय उपस्थिति दर्ज कराती हैं (पाण्डेय, 1986)। इसी कड़ी में जे. लाल दावर का मानना है कि प्रेमचन्द की स्त्रियाँ पारंपरिक नारीत्व और उभरते नारीवाद दोनों के बीच संतुलन साधती हैं, जिससे वे "नई भारतीय नारी" के निर्माण का हिस्सा बनती हैं (लाल दावर, 1987)।

प्रेमचन्द की रचनाओं में औपनिवेशिक आधुनिकता को केवल एक पश्चिमी आयात नहीं माना गया, बल्कि उसे भारतीय समाज की वास्तविकताओं से जोड़कर देखा गया। उनकी स्त्रियाँ इस आधुनिकता को अपने अनुभवों के आधार पर नए अर्थ देती हैं। गोदान की झुनिया या गबन की जालपा जैसे पात्र यह दर्शाते हैं कि स्त्री की राष्ट्रवादी राजनीति और सामाजिक सुधार दोनों में कैसे सक्रिय भूमिका निभाती है। प्रेमचन्द ने स्त्री को केवल "त्यागमूर्ति" के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तन की वाहक के रूप में प्रस्तुत किया। के. जेयालक्ष्मी ने उन्हें एक ऐसे सामाजिक सुधारक के रूप में देखा है जिनकी दृष्टि में स्त्री की मुक्ति भारतीय समाज के पुनर्निर्माण का अनिवार्य हिस्सा थी (जेयालक्ष्मी, 2016)। इस प्रकार, प्रेमचन्द की कथाएँ औपनिवेशिक आधुनिकता और राष्ट्रवाद के बीच स्त्री की नई पहचान को गढ़ने की प्रक्रिया को स्पष्ट करती हैं–जहाँ "नई भारतीय नारी" न तो अंधी परम्परा में जकड़ी रहती है और न ही औपनिवेशिक आधुनिकता की दासी बनती है, बल्कि वह परिवर्तन, आत्मसम्मान और समानता की खोज में निरंतर आगे बढ़ती है।

5. अधीनता और प्रतिरोध: गोदान और उसके परे स्त्रियों के अधिकार

प्रेमचन्द का गोदान भारतीय समाज में स्त्रियों की अधीनता और संघर्ष को गहराई से चित्रित करने वाला उपन्यास है। इस कृति में स्त्री-जीवन की विडम्बना यह है कि उसे एक ओर परिवार और समाज में समर्पण और सेवा के आदर्श रूप में देखा जाता है, वहीं दूसरी ओर उसे अधिकार और स्वतंत्रता से वंचित रखा जाता है। झुनिया का चरित्र इस अधीनता का प्रतिनिधित्व करता है, क्योंकि विवाहेतर संबंध के कारण समाज उसे अस्वीकार करता है, लेकिन वही समाज स्त्री के श्रम और त्याग पर आश्रित भी है। इस प्रकार गोदान स्त्रियों की दबी हुई आवाज़ को उजागर करता है, जो पितृसत्ता और सामाजिक असमानता के बीच दबा दी जाती है। कोशल और सिंह का मानना है कि प्रेमचन्द का साहित्य केवल सामाजिक यथार्थ का दस्तावेज़ नहीं, बल्कि प्रतिरोध की राजनीति को भी सामने लाता है, जहाँ हाशिये पर खड़ी स्त्रियाँ अपने अस्तित्व और अधिकार की लड़ाई लड़ती हैं (कोशल और सिंह, 2025)।

यद्यपि गोदान स्त्रियों की अधीनता का मार्मिक चित्रण करता है, यह प्रतिरोध की सम्भावनाओं को भी रेखांकित करता है। स्त्रियाँ परिवार और समाज की अपेक्षाओं को पूरी तरह स्वीकार नहीं करतीं, बल्कि उनके भीतर विद्रोह और स्वतंत्रता की आकांक्षा भी लगातार मौजूद रहती है। यह प्रतिरोध हमेशा सीधे टकराव के रूप में नहीं, बल्कि छोटे-छोटे विकल्पों और आत्मसम्मान के संकेतों के रूप में सामने आता है। स्त्रीवादी आलोचना इसे आधुनिक भारतीय साहित्य में नारीवादी विमर्श के आरंभिक सूत्रों के रूप में देखती है। चट्टोपाध्याय का कहना है कि भारतीय समाज में स्त्रियों का हाशियाकरण केवल लैंगिक ही नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक बहिष्कार से भी जुड़ा हुआ है, और साहित्य इन जटिलताओं को रेखांकित करता है (चटर्जी, 2024)। इसी तरह नलिनी मोगे बताती हैं कि स्त्री-लेखन और दलित स्त्रीवादी लेखन दोनों ही “हम लड़ेंगे” जैसी पुकार के साथ अन्याय के विरुद्ध प्रतिरोध को स्वर प्रदान करते हैं (मोगे, 2023)। इस दृष्टि से

गोदान और अन्य प्रेमचन्दीय रचनाएँ न केवल स्त्रियों की अधीनता का लेखा-जोखा हैं, बल्कि प्रतिरोध और अधिकारों की संभावनाओं की भी खोज हैं।

6. जाति और लिंग का अंतर्संबंध: प्रेमचन्द की पुरुष लेखनी में अंतर्विरोध

प्रेमचन्द का साहित्य भारतीय समाज की जटिलताओं को गहराई से पकड़ता है, जहाँ जाति और लिंग के प्रश्न आपस में गुंथे हुए दिखाई देते हैं। उनकी कहानियाँ और उपन्यास स्त्रियों और दलित समुदायों की सामाजिक-आर्थिक दुर्दशा को उजागर करते हैं, परन्तु यह उद्घाटन हमेशा स्त्रियों के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि एक पुरुष लेखक की दृष्टि से होता है। यही कारण है कि उनके लेखन में स्त्रियों और दलित पात्रों की स्वायत्तता कई बार अधूरी या सीमित दिखाई देती है। चारु गुप्ता ने इस अंतर्विरोध की ओर संकेत करते हुए कहा है कि उत्तर भारत में पुरुष लेखन जाति और लिंग के सवालों को एक साथ सामने लाता है, परंतु उसमें पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण और सुधारवादी मंशा आपस में उलझी रहती है (गुप्ता, 2018)। प्रेमचन्द का साहित्य इस अंतर्विरोध का उदाहरण है, जहाँ लेखक शोषित तबकों की स्थिति पर गहरी चिंता जताते हैं, लेकिन समाधान अक्सर परंपरागत नैतिकता और पुरुष-केन्द्रित सोच से प्रभावित होता है।

प्रेमचन्द की कहानियों जैसे ठाकुर का कुआँ, सद्गति और गोदान में जाति और लिंग का अंतर्संबंध स्पष्ट दिखाई देता है। दलित स्त्रियाँ दोहरी पीड़ा झेलती हैं–एक ओर वे जातिगत भेदभाव का शिकार होती हैं और दूसरी ओर लिंग के कारण परिवार और समाज से दबाई जाती हैं। मीनाक्षी चटर्जी का कहना है कि भारतीय समाज में स्त्रियों का हाशियाकरण केवल लिंग आधारित नहीं है, बल्कि उसमें सांस्कृतिक और सामाजिक बहिष्कार की परतें भी शामिल हैं, जिन्हें साहित्य ने कई बार उजागर किया है (चटर्जी, 2024)। इस संदर्भ में प्रेमचन्द के पात्र यह दिखाते हैं कि किस तरह जाति और लिंग के प्रश्न एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। हालांकि प्रेमचन्द इन प्रश्नों को ईमानदारी से प्रस्तुत करते हैं, फिर भी उनके पात्रों की आवाज़ को पूरी तरह स्वतंत्रता नहीं मिलती। नलिनी मोगे का यह तर्क प्रासंगिक है कि दलित स्त्रीवादी लेखन ने उन आवाज़ों को केंद्र में लाने का प्रयास किया है, जिन्हें पुरुष-प्रधान लेखन, चाहे वह प्रगतिशील ही क्यों न हो, अक्सर हाशिए पर रखता है (मोगे, 2023)।

प्रेमचन्द की पुरुष लेखनी का अंतर्विरोध यह है कि वे स्त्रियों और दलितों की समस्याओं को उजागर तो करते हैं, लेकिन उनके समाधान में पितृसत्तात्मक और जातिगत संरचनाओं से परे जाने का साहस सीमित दिखाई देता है। प्रभु का कहना है कि आधुनिक भारत में स्त्रीवादी लेखन ने जिस स्वतंत्र स्वरूप की तलाश की, वह पुरुष लेखन से अलग अपनी शैली और दृष्टिकोण में विकसित हुआ (प्रभु, 2025)। वहीं चक्रवर्ती और चंडेल का मानना है कि दक्षिण एशियाई साहित्य में लिंग दृष्टिकोण को समझने के लिए यह देखना आवश्यक है कि किस तरह पुरुष लेखक स्त्री और दलित पात्रों को प्रस्तुत करते हैं और किस तरह वे उनकी आत्मनिर्भरता को सीमित कर देते हैं (चक्रवर्ती एवं चंडेल, 2014)। इस दृष्टि से प्रेमचन्द की लेखनी भारतीय समाज के जाति और लिंग संबंधी अंतर्विरोधों को तो सामने लाती है, लेकिन उसका समाधान उस समय की पितृसत्तात्मक और सुधारवादी सीमाओं से बँधा हुआ है। यही कारण है कि प्रेमचन्द को पढ़ते समय उनके साहित्य में निहित गहरे मानवीय सरोकारों के साथ-साथ इन अंतर्विरोधों को भी स्वीकार करना ज़रूरी हो जाता है।

7. तुलनात्मक नारीवादी पाठ: प्रेमचन्द और समकालीन वैश्विक दृष्टिकोण

प्रेमचन्द का साहित्य भारतीय समाज में स्त्रियों की स्थिति को गहरी संवेदना और यथार्थवादी दृष्टि से प्रस्तुत करता है। उनकी कहानियाँ और उपन्यास स्त्रियों के घरेलू श्रम, त्याग और सामाजिक उपेक्षा को उजागर करते हैं, वहीं दूसरी ओर उनके भीतर छिपी हुई स्वायत्तता और प्रतिरोध की क्षमता को भी सामने लाते हैं। निर्मला, सेवासदन और गोदान जैसी रचनाएँ इस बात को स्पष्ट करती हैं कि स्त्रियाँ केवल पारिवारिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे व्यापक सामाजिक परिवर्तनों की सक्रिय वाहक भी हैं। गीता पाण्डेय का कहना है कि प्रेमचन्द की स्त्रियाँ असमानता के ढाँचे में रहते हुए भी बराबरी और न्याय की तलाश करती हैं, और यही उन्हें भारतीय साहित्य में विशिष्ट बनाता है (पाण्डेय,

1986)। यह दृष्टिकोण स्त्री-अस्तित्व को केवल परंपरागत भूमिकाओं तक सीमित न रखकर, उसे सामाजिक संघर्ष और परिवर्तन के विमर्श से जोड़ता है।

यदि प्रेमचन्द की स्त्री-छवियों को समकालीन वैश्विक नारीवादी दृष्टिकोण से देखा जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि उनका साहित्य स्थानीय समस्याओं के बावजूद सार्वभौमिक महत्व रखता है। मीनाक्षी चटर्जी का कहना है कि भारतीय समाज में स्त्रियों का हाशियाकरण केवल लिंग आधारित नहीं है, बल्कि सांस्कृतिक और सामाजिक बहिष्कार से भी जुड़ा हुआ है (चटर्जी, 2024)। इसी तरह, नलिनी मोगे बताती हैं कि दलित स्त्रीवादी लेखन "हम लड़ेंगे!" जैसी पुकार के माध्यम से न केवल भारतीय परिप्रेक्ष्य में, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी स्त्रियों के साझा संघर्ष को सामने लाता है (मोगे, 2023)। इस तुलना से स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द का साहित्य भले ही औपनिवेशिक भारत की पृष्ठभूमि में लिखा गया हो, लेकिन उसमें स्त्री-अधिकार, समानता और न्याय के जो प्रश्न उठाए गए हैं, वे आज के वैश्विक नारीवादी विमर्श में भी उतने ही प्रासंगिक हैं। इस प्रकार, प्रेमचन्द को पढ़ना हमें भारतीय समाज की ऐतिहासिक चुनौतियों के साथ-साथ वैश्विक स्तर पर स्त्री-मुक्ति और प्रतिरोध के साझा अनुभवों को समझने का अवसर देता है।

8. प्रतिनिधित्व की राजनीति: स्त्रीत्व, स्वायत्तता और हाशियाकरण प्रेमचन्द की कहानियों में

प्रेमचन्द की कहानियाँ स्त्री-अस्तित्व, उसकी भूमिका और समाज में उसके स्थान पर गहन प्रश्न उठाती हैं। उनके कथा-संसार में स्त्रियाँ अक्सर गृहस्थ जीवन, त्याग और सहनशीलता के प्रतीक के रूप में सामने आती हैं, लेकिन इसके भीतर उनकी आवाज़ और स्वायत्तता को भी अभिव्यक्त करने का प्रयास मिलता है। कफन, ठाकुर का कुआँ और बड़े घर की बेटी जैसी कहानियों में स्त्रियाँ न केवल परिवार की रीढ़ होती हैं, बल्कि सामाजिक असमानता और पितृसत्तात्मक दबाव की मार भी सहती हैं। गीता पाण्डेय का कहना है कि प्रेमचन्द की रचनाएँ स्त्रियों की स्थिति में समानता और असमानता, दोनों को उजागर करती हैं और यह दिखाती हैं कि स्त्री अपनी सीमाओं के भीतर भी बराबरी के लिए संघर्ष करती रहती है (पाण्डेय, 1986)। वहीं, चारु गुप्ता इस ओर ध्यान दिलाती हैं कि प्रेमचन्द की कहानियों में स्त्रियों का चित्रण कई बार आलोचनात्मक ढंग से सामने आता है–जहाँ उनकी पीड़ा का मार्मिक चित्रण है, वहीं उनके संघर्ष को पूरा स्थान नहीं मिलता (गुप्ता, 1991)। इस प्रकार, प्रेमचन्द का साहित्य स्त्रीत्व और स्वायत्तता की राजनीति को एक साथ प्रस्तुत करता है।

हालाँकि प्रेमचन्द ने स्त्रियों के हाशियाकरण को गहराई से उजागर किया, परंतु उनकी दृष्टि में सुधारवादी और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण का अंतर्विरोध भी दिखाई देता है। जे. लाल दावर का मत है कि प्रेमचन्द की स्त्रियाँ परंपरागत नारीत्व और नारीवादी चेतना के बीच झूलती रहती हैं, जिससे उनके पात्र एक जटिल द्वंद्व का प्रतिनिधित्व करते हैं (लाल दावर, 1987)। इसी तरह सुरभि रॉय का कहना है कि प्रेमचन्द की कहानियाँ एक "नई भारतीय नारी" की छवि गढ़ने की राजनीति का हिस्सा थीं, जहाँ स्त्री को उपनिवेशवाद और पितृसत्ता दोनों के विरुद्ध परिभाषित किया गया (रॉय, 2016)। यहाँ प्रतिनिधित्व की राजनीति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है: स्त्री को त्याग और मर्यादा की मूर्ति बनाकर आदर्शीकृत भी किया जाता है और सामाजिक-राजनीतिक विमर्श में उसकी भागीदारी को एक नई पहचान भी दी जाती है। इस प्रकार, प्रेमचन्द की कहानियाँ स्त्रियों के हाशियाकरण और प्रतिरोध, दोनों को समान रूप से उभारती हैं और नारीवादी आलोचना के लिए एक समृद्ध आधार प्रदान करती हैं।

9. निष्कर्ष

प्रेमचन्द का साहित्य स्त्रियों के अस्तित्व, उनकी भूमिका और सामाजिक स्थिति को बहुआयामी दृष्टि से प्रस्तुत करता है। उनके पात्रों में स्त्रियाँ केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि वे अपने भीतर छिपे हुए प्रतिरोध और

स्वायत्तता की चेतना को भी अभिव्यक्त करती हैं। गोदान की झुनिया, निर्मला की नायिका या सेवासदन की स्त्रियाँ इस बात की गवाही देती हैं कि प्रेमचन्द ने स्त्री के भीतर संघर्ष और परिवर्तन की सम्भावना को पहचाना। हालाँकि उनकी पुरुष लेखनी में सुधारवादी दृष्टिकोण और पितृसत्तात्मक सीमाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं, फिर भी वे स्त्री-अधिकारों और समानता की दिशा में साहित्यिक विमर्श का महत्त्वपूर्ण आधार रखते हैं। प्रेमचन्द का लेखन जाति और लिंग दोनों की जटिलताओं को उजागर करता है, जहाँ दलित स्त्रियाँ दोहरी दासता का अनुभव करती हैं। उनके पात्रों के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों का श्रम और त्याग समाज की नींव है, फिर भी उन्हें मान्यता और अधिकार से वंचित रखा गया। आधुनिक नारीवादी आलोचना प्रेमचन्द को केवल एक ऐतिहासिक लेखक नहीं मानती, बल्कि एक ऐसे साहित्यकार के रूप में देखती है जिनकी रचनाएँ आज भी स्त्री-मुक्ति, समानता और प्रतिरोध की बहस में उतनी ही प्रासंगिक हैं। वैश्विक नारीवादी विमर्श के परिप्रेक्ष्य में प्रेमचन्द की स्त्री-पहचान हमें यह समझने में मदद करती है कि स्थानीय यथार्थ और वैश्विक संघर्ष किस प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं। इस प्रकार, प्रेमचन्द का साहित्य परम्परा और आधुनिकता, अधीनता और प्रतिरोध, त्याग और स्वायत्तता–सभी के बीच गहरे संवाद रचता है और आधुनिक नारीवादी पाठ के लिए एक सशक्त आधार प्रदान करता है।

संदर्भ सूची

1. पाण्डेय, गीता (1986). कितनी समान?: प्रेमचन्द की रचनाओं में स्त्रियाँ. इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, पृ. 2183-2187।
2. लाल दावर, जे. (1987). नारीवाद और नारीत्व: प्रेमचन्द की कहानियों में स्त्रियाँ. स्टडीज़ इन हिस्ट्री, 3(1), 121-136।
3. जेयालक्ष्मी, के. (2016). सामाजिक सुधारक प्रेमचन्द - एक समीक्षा. जर्नल ऑफ लिटरेचर, लैंग्वेजेज़ एंड लिंग्विस्टिक्स, 20, 44-46।
4. ओबेसेकेरे, रजनी (1986). गोदान में स्त्रियों के अधिकार और भूमिकाएँ. जर्नल ऑफ साउथ एशियन लिटरेचर, 21(2), 57-64।
5. गुप्ता, चारु (1991). प्रेमचन्द की कहानियों में स्त्रियों का चित्रण: एक समालोचना. सोशल साइंटिस्ट, पृ. 88-113।
6. रॉय, सुरभि (2016). प्रेमचन्द की कहानियों में 'नई' भारतीय नारी की राजनीति. साउथ एशिया रिसर्च, 36(2), 229-240।
7. नगराजन, आर. एवं मैरी, एस. ई. भारत में नारी साहित्य. वेल्स इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, टेक्नोलॉजी एंड एडवांस्ड स्टडीज़ (VISTAS), पृ. 92।
8. पाण्डेय, गीता (2020). घर में पुरुष: बीसवीं सदी के भारत में लैंगिक रोज़मर्रा की प्रथाएँ. फेमिनिस्ट स्टडीज़, 46(2), 403-430।
9. सिंह, एस. के. (2024). प्रतिरोध और अनुकूलन के बीच: औपनिवेशिक उत्तर भारत में प्रेमचन्द का साहित्य. रूटलेज।
10. कोशल, पी. एवं सिंह, एस. (2025). सामाजिक-राजनीतिक संकट के विरुद्ध प्रतिरोध: मुंशी प्रेमचन्द और पॉल बीटी का तुलनात्मक अध्ययन. कुएस्तियोनेस दे फिसियोतेरापिया, 54(3), 3643-3670।
11. धरवाड़कर, वी. एवं लियामस, आई. एम. (2015). भारत में आधुनिकतावादी उपन्यास: प्रतिमान और प्रयोग. इन ए हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नॉवेल इन इंग्लिश, पृ. 103-118।
12. मेहराज, पी. सी. (2023). जेंडर का प्रतिनिधित्व: बीना शाह के उपन्यास "बिफोर शी स्लीप्स" का उपनिवेशोत्तर नारीवादी विश्लेषण. एसबीबीयू जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज़, 1(1), 60-70।

13. प्रभु, गीतांजलि (2025). ए जॉनर ऑफ हर ओन: जीवन-वृत्तांत और आधुनिक भारत में नारीवादी साहित्य की शुरुआत. ब्लूम्सबरी पब्लिशिंग।
14. चटर्जी, मीनाक्षी (2024). भारतीय समाज में लैंगिक हाशियाकरण: भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य में स्त्रियों की असमानताएँ और बहिष्कार. मार्जिन्स/मार्जेस/मार्जिनी, (2), 31-48।
15. द्विवेदी, सुरेश. नारीवाद और यात्रा-वृत्तांत: राहुल सांकृत्यायन की कृतियों का समकालीन महत्व.
16. गुप्ता, चारु (2018). जाति को चुनौती देना, जेंडर को निभाना: उत्तर भारत में पुरुष लेखन के अंतर्विरोध. इन Men and Feminism in India, पृ. 214-236। रूटलेज इंडिया।
17. गुप्ता, चारु (2018). जाति को चुनौती देना, जेंडर को निभाना: उत्तर भारत में पुरुष लेखन के अंतर्विरोध. इन Men and Feminism in India, पृ. 214-236। रूटलेज इंडिया।
18. चक्रवर्ती, बिनोदिनी एवं चंडेल, ए. एस. (2014). लैंगिक दृष्टिकोण: दक्षिण एशियाई साहित्य (अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी अनुवादों में). नई दिल्ली: टुडे एंड टुमारो पब्लिशर्स, पृ. 251।
19. मोगे, नलिनी. “हम लड़ेंगे!”: दलित नारीवादी लेखन।